श्रीमद् भगवद्गीता

(संक्षिप्त)

श्री गीता चालीसा सहित

रामानन्द प्रसाद

अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

ॐ श्री गणेशाय नमः ॐ

श्री गीता महिमा

वसुदेवसुतं देवं, कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं, कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।१।।
मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्दमाधवम् ।।२।।

गीता हृदय भगवान का, सब ज्ञान का शुभ सार है ।
इस शुद्ध गीता ज्ञान से ही, चल रहा संसार है ।।१।।
गीता परमविद्या सनातन, कर्म शास्त्र प्रधान है ।
परब्रह्म रूपी मोक्षकारी, नित्य गीता-ज्ञान है ।।२।।
यह मोह माया कष्टमय, तरना जिसे संसार हो ।
वह बैठ गीता नाव में, सुख से सहज में पार हो ।।३।।
संसार के सब ज्ञान का, यह ज्ञानमय भंडार है ।
श्रुति, उपनिषद् , वेदान्त-ग्रन्थों का परम शुभ सार है
गाते जहां जन नित्य "हरिगीता" निरंतर नेम से ।
रहते वही सुख-कन्द नटवर, नन्द-नन्दन प्रेम से ।।५।।
गाते जहां जन गीत-गीता, प्रेम से धर ध्यान हैं ।
तीरथ वहीं भव के सभी, शुभ शुद्ध और महान हैं
धरते हुए जो ध्यान गीता-ज्ञान का तन छोड़ते ।
लेने उसे माधव मुरारी, आप ही उठ दौड़ते ।।७।।
सुनते-सुनाते नित्य, जो लाते इसे व्यवहार में ।
पाते परम-पद ठोकरे, खाते नहीं संसार में ।।८।।

श्री गीता चालीसा
दैनिक पाठ के लिए

धृतराष्ट्र बोले– हे संजय, धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए युद्ध के इच्छुक मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या-क्या किया? (१.०१)

संजय बोले– इस तरह करुणा से व्याप्त, आंसूभरे, व्याकुल नेत्रोंवाले, शोकयुक्त अर्जुन से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा. (२.०१)

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, तुम ज्ञानियों की तरह बातें करते हो, लेकिन जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए शोक करते हो. ज्ञानी मृत या जीवित किसी के लिए भी शोक नहीं करते. (२.११)

जैसे इसी जीवन में जीवात्मा वाल, युवा, और वृद्ध शरीर प्राप्त करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के वाद दूसरा शरीर प्राप्त करता है. इसलिए धीर पुरुष को मृत्यु से घबराना नहीं चाहिए. (२.१३)

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर दूसरे नए वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के वाद पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर प्राप्त करता है.

सुख-दुःख, लाभ-हानि, और जीत-हार की चिन्ता न करके मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार कर्तव्य कर्म

करना चाहिए. ऐसे भाव से कर्म करने पर मनुष्य को पाप (या कर्म का बन्धन) नहीं लगता. (२.३८)

केवल कर्म करना ही मनुष्य के वश में है, कर्मफल नहीं. इसलिए तुम कर्मफल की आसक्ति में न फंसो, तथा अपने कर्म का त्याग भी न करो.

कर्मफल की आसक्ति त्यागकर काम करनेवाला निष्काम कर्मयोगी इसी जीवन में पाप और पुण्य से मुक्त हो जाता है, इसलिए तू निष्काम कर्मयोगी बन. निष्काम कर्मयोग को ही कुशलतापूर्वक कर्म करना कहते हैं. (२.५०)

जैसे जल में तैरती नाव को तूफान उसके लक्ष्य से दूर ढकेल देता है, वैसे ही इन्द्रिय-सुख मनुष्य की बुद्धि को गलत रास्ते की ओर ले जाता है. (२.६७)

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको कर्ता समझ लेता है, तथा कर्मफल के बंधनों से बंध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की एक कठपुतली मात्र है. (३.२७)

आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, (सेवा, ध्यान, पूजन, आदि से किए हुए शुद्ध) बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो, तुम इस दुर्जय कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (३.४३)

हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानि और अधर्म की बृद्धि होती है, तब मैं, परब्रह्म परमात्मा, प्रकट होता हूं. (४.०७)

मेरे द्वारा ही चारों वर्ण अपने-अपने गुण, स्वभाव, और रुचि अनुसार बनाए गए हैं. सृष्टि की रचना आदि कर्म के कर्ता होनेपर भी मुझ परमेश्वर को अविनाशी तथा अकर्ता ही जानना चाहिए, क्योंकि प्रकृति के गुण ही संसार चला रहे हैं. (४.१३)

जो मनुष्य कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखता है वही ज्ञानी, योगी, तथा समस्त कर्मों का करनेवाला है. अपनेको कर्ता नहीं मानकर प्रकृति के गुणों को ही कर्ता मानना कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखना कहलाता है.

यज्ञ का अर्पण, घी, अग्नि, तथा आहुति देनेवाला सभी परब्रह्म परमात्मा ही है. इस तरह जो सब कुछ परमात्मा स्वरूप देखता है, वह परमात्मा को प्राप्त होता है. (४.२४)

कर्मयोग मनुष्य के चित्त और बुद्धि को शुद्ध करके उसके सभी कर्मों को पवित्र कर देता है. ठीक समय आने पर शुद्ध बुद्धि द्वारा योगी ईश्वर का दर्शन करता है. (४.३८)

हे अर्जुन, कर्मयोग की निःस्वार्थ सेवा के बिना शुद्ध संन्यास-भाव, अर्थात सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग, प्राप्त होना कठिन है. निष्काम कर्मयोगी शीघ्र ही परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है. (५.०६)

जो मनुष्य कर्मफल में लोभ और आसक्ति त्यागकर, सभी कर्मों को परमात्मा को अर्पण करता है, वह कमल के

पत्ते की तरह पापरूपी जल से कभी लिप्त नहीं होता. (५.१०)

जो मनुष्य सब जगह तथा सबमें मुझ परब्रह्म परमात्मा को ही देखता है, और सबको मुझमें ही देखता है, मैं उससे अलग नहीं रहता तथा वह भी मुझ से दूर नहीं होता. (६.३०)

हे अर्जुन, चार प्रकार के उत्तम पुरुष – दुःख से पीडित, परमात्मा को जानने की इच्छावाले जिज्ञासु, धन या किसी इष्टफल की इच्छावाले, तथा ज्ञानी – मुझे भजते हैं. (७.१६)

अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर कि "यह सव कुच्छ कृष्णमय है," मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं; ऐसे महात्मा बहुत दुर्लभ हैं. (७.१९)

अज्ञानी मनुष्य मुझ परब्रह्म परमात्मा के – मन, बुद्धि, तथा वाणी से परे, परम अविनाशी – दिव्यरूप को नहीं जानने और समझने के कारण ऐसा मान लेते हैं कि मैं बिना रूपवाला निराकार हूं, तथा रूप धारण करता हूं. (७.२४)

हे अर्जुन, मनुष्य मृत्यु के समय जिस किसी भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह सदा उस भाव के चिन्तन करने के कारण उसी भाव को प्राप्त होता है. (८.०६)

इसलिए हे अर्जुन, तू सदा मेरा स्मरण कर, और अपना कर्तव्य कर. इस तरह मुझमें अर्पण किए मन और बुद्धि से युक्त होकर निःसन्देह तुम मुझको ही प्राप्त होगे. (८.०७)

हे अर्जुन, जो मुझमें ध्यान लगाकर नित्य मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी को मैं सहज ही प्राप्त होता हूं. (८.१४)

जो भक्तजन अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन नित्ययुक्त भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूं. (९.२२)

जो मनुष्य प्रेमभक्ति से पत्र, फूल, फल, जल, आदि कोई भी वस्तु मुझे अर्पण करता है, मैं उस शुद्धचित्तवाले भक्त का वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसका भोग भी करता हूं. (९.२६)

मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे प्रणाम कर. इस प्रकार मेरा परायण होने से तुम मुझे ही प्राप्त होगे. (९.३४)

मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूं, और मुझसे ही जगत् का विकास होता है. ऐसा जानकर बुद्धिमान् भक्तजन श्रद्धापूर्वक मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं. (१०.०८)

हे अर्जुन, जो पुरुष मेरे लिए ही कर्म करता है, मुझपर ही भरोसा रखता है, मेरा भक्त है, तथा जो आसक्ति-रहित और निर्वैर है, वही मुझे प्राप्त करता है.

मुझमें ही अपना मन लगा, और बुद्धिसे मेरा ही चिन्तन कर, इसके उपरान्त निःसंदेह तुम मुझमें ही निवास करोगे. (१२.०८)

जो पुरुष अविनाशी परमेश्वर को ही समस्त नश्वर प्राणियों में समान भाव से स्थित देखता है, वही वास्तव में ईश्वर का दर्शन करता है. (१३.२७)

जो पुरुष अनन्यभक्ति से मेरी उपासना करता है, वह प्रकृति के तीनों गुणों को पार करके परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के योग्य हो जाता है. (१४.२६)

मैं ही सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित हूं. स्मृति, ज्ञान, तथा शंका-समाधान (विवेक या समाधि द्वारा) भी मुझसे ही होता है. समस्त वेदों के द्वारा जाननेयोग्य वस्तु, वेदान्त का कर्ता, तथा वेदों का जाननेवाला भी मैं ही हूं.

काम, क्रोध, और लोभ मनुष्य को नरक की ओर ले जानेवाले तीन रास्ते हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग करना चाहिए. (१६.२१)

वाणी वही अच्छी है जो दूसरों के मन में अशान्ति पैदा न करे, जो सत्य, प्रिय, और हितकारक हो, तथा जिसका उपयोग शास्त्रों के पढ़ने में हो.

मुझे श्रद्धा और भक्ति के द्वारा ही जाना जा सकता है कि मैं कौन हूं और क्या हूं. मुझे जानने के पश्चात् मनुष्य मुझमें ही प्रवेश कर जाता है. (१८.५५)

हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहकर अपनी माया के द्वारा मनुष्य को कठपुतली की तरह नचाते रहता है. (१८.६१)

सम्पूर्ण धर्मों का (अर्थात् पुण्य कार्यों का भी) परित्याग करके तुम एक मेरी ही शरण में आ जाओ. शोक

मत करो, मैं तुम्हें समस्त पापों (अर्थात् कर्म के बंधनों) से मुक्त कर दूंगा. (१८.६६)

जो पुरुष श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक (गीता के) इस ज्ञान का मेरे भक्तों के बीच प्रचार और प्रसार करेगा, वह मेरा सबसे प्यारा होगा और निःसन्देह मुझे प्राप्त करेगा. (१८.६८)

संजय बोले– जहां भी, जिस देश या घर में, (धर्म अर्थात् शास्त्रधारी) योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा (धर्मरक्षा एवं कर्मरूपी) शस्त्रधारी अर्जुन दोनों होंगे, वहीं श्री, विजय, विभूति, और नीति आदि सदा विराजमान रहेंगी. ऐसा मेरा अटल विश्वास है. (१८.७८)

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्
श्रीकृष्णार्पणं अस्तु शुभं भूयात्
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्रीमद् भगवद्गीता

(संक्षिप्त)

१. अर्जुन का शोक

करीब ५,000 वर्ष पहले की बात है. साम्राज्य के लिए चचेरे भाईयों में युद्ध हुआ. दोनों ओर की सेनाओं में सगे-सम्बन्धीगण, गुरुजन, व समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे. महात्मा अर्जुन स्वयं एक प्रसिद्ध योद्धा व असाधारण धनुर्धारी थे. महात्मा अर्जुन के बचपन के सखा भगवान श्रीकृष्ण उनके सारथी बने.

युद्ध क्षेत्र में अपने बान्धवों व आचार्यों आदि को देख कर अर्जुन शोक में पड़ गए. वे कहने लगे— हे कृष्ण, मैं युद्ध में विजय नहीं चाहता, न राज्य और न युद्ध में जीत कर प्राप्त होने वाला सुख ही चाहता हूं. जिन के लिए हमारी राज्य, भोग और सुख की इच्छा है, वे सब अपने-अपने प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध क्षेत्र में खड़े हैं. (१.३२-३३)

अर्जुन ने कहा— हे कृष्ण, इस राज्य की तो बात ही क्या, चाहे मुझे त्रिलोक का राज्य भी मिले, तो भी मैं अपने धर्म-गुरुओं व सम्बन्धियों को नहीं मारना चाहता. (१.३४-३५) ऐसा कहकर शोकातुर अर्जुन धनुष-बाण का त्याग करके, युद्ध-भूमि में रथ में बैठ गया. (१.४७)

ॐ तत्सदिति प्रथमोऽध्यायः ।

२. ब्रह्मविद्यायोग

अर्जुन द्वारा युद्ध-विरोधी तर्कों को जारी रखना

इन गुरुजनों को मारने से अच्छा इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना है, क्योंकि गुरुजनों को मारकर तो इस लोक में उनके रक्त से सने हुए अर्थ और कामरूपी भोगों को ही तो भोगूंगा. (२.०५) और हम यह भी नहीं जानते कि हम लोगों के लिए युद्ध करना या न करना, इन दोनों में कौन-सा काम अच्छा है. अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या वे जीतेंगे. जिन्हें मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं. (२.०६)

आत्मा और शरीर के सच्चे ज्ञान से गीता के उपदेशों का प्रारम्भ

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, तुम ज्ञानियों की तरह बातें करते हो, लेकिन जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए, उनके लिए शोक करते हो. ज्ञानी मृत या जीवित किसी के लिए भी शोक नहीं करते. (२.११) ऐसा नहीं है कि मैं किसी समय नहीं था, अथवा तुम नहीं थे या ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे. (२.१२) जैसे इसी जीवन में जीवात्मा बाल, युवा और वृद्ध शरीर प्राप्त करता है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद दूसरा शरीर प्राप्त करता है. इसलिए धीर मनुष्य को मृत्यु से घबराना नहीं चाहिए. (२.१३)

आत्मा नित्य है, शरीर अनित्य है

उस अविनाशी तत्त्व (आत्मा) को जानो, जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, इस अविनाशी का नाश करने में कोई भी

समर्थ नहीं है. (२.१७) इस अविनाशी आत्मा के ये सब शरीर नाशवान कहे गये हैं, इसलिए हे अर्जुन, तुम युद्ध करो. (२.१८) जो इस आत्मा को मारने वाला या मरने वाला मानते हैं, वे दोनों ही नासमझ हैं, क्योंकि आत्मा न किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जा सकता है. (२.१९) आत्मा कभी न जन्म लेता है और न मरता ही है. आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है. शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता. (२.२०)

मृत्यु, और आत्मा का पुनर्जन्म की व्याख्या

जैसे मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को उतारकर दूसरे नये वस्त्र धारण करता है, वैसे ही जीव मृत्यु के बाद अपने पुराने शरीर को त्यागकर दूसरा नया शरीर प्राप्त करता है. (२.२२)

हे अर्जुन, यदि तुम शरीर में रहने वाला जीवात्मा को नित्य पैदा होने वाला तथा मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए; क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है. अतः जो अटल है, उसके विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. (२.२६-२७) हे अर्जुन, सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मृत्यु के बाद फिर अप्रकट हो जायेंगे, केवल जन्म और मृत्यु के बीच में प्रकट दिखते हैं; फिर इसमें शोक करने की क्या बात है? (२.२८)

अर्जुन को क्षत्रिय के कर्त्तव्यों का आभास कराना

और अपने स्वधर्म की दृष्टि से भी तुम्हें अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्म नहीं है. (२.३१) हे अर्जुन, अपने आप प्राप्त हुआ युद्ध स्वर्ग के खुले हुए द्वार जैसा है, जो सौभाग्यशाली क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है. (२.३२) युद्ध में मरकर तुम स्वर्ग जाओगे या विजयी होकर पृथ्वी का राज्य भोगोगे; इसलिए हे कौन्तेय, तुम युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ. (२.३७) सुख-दुख, लाभ-हानि और जीत-हार की चिन्ता न करके मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार कर्तव्य-कर्म करना चाहिए. ऐसे भाव से कर्म करने पर मनुष्य को पाप (अर्थात् कर्म का बन्धन) नहीं लगता. (२.३८)

कर्मयोग का सिद्धान्त और व्यवहार

केवल कर्म करना ही मनुष्य के वश में है, कर्मफल नहीं. इसलिए तुम कर्मफल की आसक्ति में न फंसो तथा अपने कर्म का त्याग भी न करो. (२.४७) हे धनंजय, परमात्मा के ध्यान और चिन्तन में स्थित होकर, सभी प्रकार की आसक्तियों को त्यागकर, तथा सफलता और असफलता में सम होकर, अपने कर्तव्यकर्मों का भलीभांति पालन करो.

आत्मज्ञानी के लक्षण

दुख से जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुख की जिसको आकांक्षा नहीं होती तथा जिसके मन से राग,

भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि ज्ञानी कहा जाता है. (२.५६) जिसे किसी भी वस्तु में आसक्ति न हो, जो शुभ को प्राप्तकर प्रसन्न न हो और अशुभ से द्वेष न करे, उसकी बुद्धि स्थिर है. (२.५७)

अनियन्त्रित इन्द्रियों के दुष्परिणाम

हे अर्जुन, संयम का प्रयत्न करते हुए ज्ञानी मनुष्य के मन को भी चंचल इन्द्रियाँ बलपूर्वक हर लेती हैं. (२.६०) इसलिए साधक अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके परमात्मा में श्रद्धापूर्वक ध्यान लगाये; क्योंकि जिसकी इन्द्रियां वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर होती है. (२.६१)

राग-द्वेष से रहित संयमी साधक अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ शान्ति प्राप्त करता है. (२.६४) जैसे जल में तैरती नाव को तूफान उसे अपने लक्ष्य से दूर ढकेल देता है, वैसे ही इन्द्रिय-सुख मनुष्य की बुद्धि को गलत रास्ते की ओर ले जाता है. (२.६७)

जैसे सभी नदियों के जल समुद्र को बिना विचलित करते हुए परिपूर्ण समुद्र में समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस संयमी मनुष्य में विकार उत्पन्न किये बिना समा जाते हैं, वह मनुष्य शान्ति प्राप्त करता है, न कि भोगों की कामना करने वाला. (२.७०)

ॐ तत्सदिति द्वितीयोऽध्यायः ।

३. कर्मयोग

अर्जुन बोले– हे कृष्ण, यदि आप कर्म से ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर, हे केशव, आप मुझे इस भयंकर कर्म में क्यों लगा रहे हैं? श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, इस लोक में दो प्रकार की साधना मेरे द्वारा पहले कही गयी है. जिनकी रुचि ज्ञान में लगती है, उनकी साधना ज्ञानयोग से और कर्म में रुचि वालों की साधना कर्मयोग से होती है. (३.०३) मनुष्य कर्म का त्यागकर कर्म के बन्धनों से मुक्त नहीं होता. केवल कर्म के त्याग मात्र से ही सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती. (३.०४) कोई भी मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति के गुणों द्वारा मनुष्यों से – परवश की तरह – सभी कर्म करवा लिए जाते हैं. (३.०५)

दूसरों की सेवा क्यों?

परन्तु हे अर्जुन, जो मनुष्य बुद्धि द्वारा अपने इन्द्रियों को वश में करके, अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा निष्काम कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है. (३.०७) केवल अपने लिए कर्म करने से मनुष्य कर्मबन्धन से बन्ध जाता है; इसलिए हे अर्जुन, कर्मफल की आसक्ति त्यागकर सेवाभाव से भलीभांति अपना कर्तव्यकर्म का पालन करो. (३.०९)

पारस्परिक सहयोग विधाता का पहला निर्देश

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में यज्ञ (अर्थात् निस्वार्थ सेवा) के साथ प्रजा का निर्माण करके कहा– एक दूसरे की मदद करते हुए तुम परम कल्याण को प्राप्त होगे. (३.११)

नेता उदाहरण बनें

श्रेष्ठ मनुष्य जैसा आचरण करता है, दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं. (३.२१) हे अर्जुन, तीनों लोकों में न तो मेरा कोई कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु मुझे अप्राप्त है, फिर भी मैं कर्म करता हूं. (३.२२) क्योंकि यदि मैं सावधान होकर कर्म न करूं तो हे अर्जुन, मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करेंगे.

सभी कर्म प्रकृति मां करतीं हैं

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां की गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा ही किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको ही कर्ता समझ लेता है तथा कर्मफल की आसक्तिरूपी बन्धनों से बन्ध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र है. (३.२७) मुझ में चित्त लगाकर, सम्पूर्ण कर्मों के फल को मुझ में अर्पण करके, आशा, ममता और संतापरहित होकर अपना कर्तव्य (युद्ध) करो. (३.३०)

पूर्णता के मार्ग में दो बाधायें

प्रत्येक इन्द्रिय के भोग में राग और द्वेष, मनुष्य के कल्याण मार्ग में विघ्न डालने वाले दो महान् शत्रु रहते हैं. इसलिए मनुष्य को राग और द्वेष के वश में नहीं होना चाहिए. (३.३४)

काम पाप का मूल है

अर्जुन बोले– हे कृष्ण, न चाहते हुए भी मनुष्य क्यों पाप का आचरण करता है? (३.३६) श्रीभगवान् बोले– रजो गुण से उत्पन्न यह काम है, यही क्रोध है, कभी भी पूर्ण नहीं होने वाले इस महापापी काम को ही तुम अध्यात्मिक मार्ग का शत्रु जानो. (३.३७) काम आत्मज्ञान को ढक देता है. (३.३८) इन्द्रियां, मन और बुद्धि काम के निवास स्थान कहे जाते हैं. यह काम इन्द्रियां, मन और बुद्धि को अपने वश में करके ज्ञान को ढककर मनुष्य को भटका देता है. (३.४०) इसलिए हे अर्जुन, तुम पहले अपनी इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विवेक के नाशक इस पापी कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (३.४१)

काम पर विजय कैसे पायें

इन्द्रियां शरीर से श्रेष्ठ कही जाती हैं, इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और आत्मा बुद्धि से भी अत्यन्त श्रेष्ठ है. (३.४२) इस प्रकार अपने आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, सेवा, ध्यान, पूजन आदि से की हुई शुद्ध बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे अर्जुन, तुम इस दुर्जय कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (३.४३)

ॐ तत्सदिति तृतीयोऽध्यायः ।

४. ज्ञानमय संन्यास मार्ग

प्रभु अवतार का उद्देश्य

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, जब-जब संसार में धर्मकी हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब अच्छे लोगों की रक्षा, दुष्टों का संहार तथा धर्म संस्थापना के लिए मैं, परब्रह्म परमात्मा, हर युग में अवतरित होता हूं. (४.०७-०८)

प्रार्थना और भक्ति का मार्ग

हे अर्जुन, जो भक्त जिस किसी भी मनोकामना से मेरी पूजा करते हैं, मैं उनकी मनोकामना की पूर्ति करता हूं. (४.११) अपने आप जो कुछ भी प्राप्त हो, उसमें संतुष्ट रहने वाला, ईर्ष्या से रहित तथा सफलता और असफलता में समभाव वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी कर्म के बन्धनों से नहीं बन्धता है. (४.२२) यज्ञ का अर्पण, घी, अग्नि तथा आहुति देने वाला सभी परब्रह्म परमात्मा ही है. इस तरह जो सब कुछ में परमात्मा का ही स्वरूप देखता है, वह परमात्मा को प्राप्त होता है. (४.२४)

ज्ञानयोग श्रेष्ठतर आध्यात्मिक अभ्यास है

हे अर्जुन, ज्ञानयोग सर्वश्रेष्ठ साधना है, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति ही सारे साधना का लक्ष्य है. (४.३३) उस ज्ञान को तुम ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास जाकर, उन्हें आदर, जिज्ञासा तथा सेवा से प्रसन्न करके सीखो. तत्त्वदर्शी ज्ञानी मनुष्य तुम्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे. (४.३४) जिसे जानकर तुम पुनः इस प्रकार भ्रम को नहीं प्राप्त होगे; तथा हे अर्जुन, इस ज्ञान के द्वारा तुम संपूर्ण भूतों को आत्मा – अर्थात्

मुझ परब्रह्म परमात्मा — में देखोगे. (४.३५) सब पापियों से अधिक पाप करने वाला मनुष्य भी पापरूपी समुद्र को ब्रह्मज्ञानरूपी नौका द्वारा निस्सन्देह पार कर जायगा. (४.३६) क्योंकि हे अर्जुन, जैसे अग्नि लकड़ी को जला देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि कर्म के सारे बन्धनों को भस्म कर देती है. (४.३७)

कर्मयोगी को ज्ञानयोग की स्वयं प्राप्ति

इस संसार में तत्त्वज्ञान के समान मन को शुद्ध करने वाला निस्संदेह कुच्छ भी नहीं है. उस तत्त्वज्ञान को, ठीक समय आने पर, कर्मयोगी अपने आप प्राप्त कर लेता है. (४.३८) श्रद्धावान, साधन-परायण और जितेन्द्रिय मनुष्य तत्त्वज्ञान को प्राप्तकर शीध्र ही परम शान्ति को प्राप्त करता है. (४.३९)

ॐ तत्सदिति चतुर्थोऽध्यायः ।

५. संन्यास का मार्ग

अर्जुन बोले— हे कृष्ण, आप ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों की प्रशंसा करते हैं. इन दोनों में एक, जो निश्चितरूप से कल्याणकारी हो, मेरे लिए कहिये. (५.०१) श्रीभगवान् बोले— ज्ञानयोग और कर्मयोग ये दोनों ही परम कल्याणकारक हैं, परन्तु उन दोनों में ज्ञानयोग से कर्मयोग आसान है. (५.०२)

दोनों मार्ग परमात्मा की ओर ले जाते हैं

अज्ञानी लोग ही, न कि पण्डितजन, ज्ञानयोग और कर्मयोग को एक दूसरे से भिन्न समझते हैं, क्योंकि इन

दोनों में से किसी एक में भी अच्छी तरह से स्थित मनुष्य दोनों के फल को प्राप्त कर लेता है. (५.०४) जो मनुष्य कर्मफल में आसक्ति का त्यागकर, सभी कर्मों को परमात्मा में अर्पण करता है, वह कमल के पत्ते की तरह पापरूपी जल से कभी लिप्त नहीं होता. (५.१०) ईश्वर किसी के पाप और पुण्य कर्म का भागी नहीं होता. अज्ञान के द्वारा ज्ञान को ढक जाने के कारण ही सब जीव भ्रमित होते हैं तथा पाप कर्म करते हैं. (५.१५)

आत्मज्ञानी के लक्षण

ज्ञानीजन सबों में परमात्मा को ही देखने के कारण ब्राह्मण तथा गाय, हाथी, कुत्ते, चाण्डाल आदि सबों को समभाव से देखते हैं. (५.१८) इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुखों का आदि और अन्त होता है तथा वे अन्त में दुख के कारण होते हैं. इसलिए हे कौन्तेय, बुद्धिमान् मनुष्य इन्द्रिय सुख में आसक्त नहीं होते. (५.२२)

ॐ तत्सदिति पञ्चमोऽध्यायः ।

६. ध्यानयोग

कर्मयोगी भी संन्यासी है

श्रीभगवान् बोले— जो मनुष्य केवल कर्मफल के भोग के लिए ही कर्म नहीं करता है, वही सच्चा संन्यासी और योगी है, केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं होता तथा क्रियाओं का त्यागने वाला योगी नहीं होता. (६.०१) हे अर्जुन,

जिसे संन्यास कहते हैं, उसी को तुम कर्मयोग समझो, क्योंकि स्वार्थ के त्याग के बिना मनुष्य कर्मयोगी नहीं हो सकता. (६.०२)

योग और योगी की परिभाषा

निष्काम कर्मयोग को मानसिक संतुलन की प्राप्ति का साधन कहा गया है और साधक के लिए मानसिक संतुलन ही ईश्वरप्राप्ति का साधन है. जब मनुष्य इन्द्रियों के भोगों में तथा कर्मफल में आसक्त नहीं रहता है, उस समय सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करने वाले संतुलित व्यक्ति को योगी कहते हैं. (६.०३-०४)

मन श्रेष्ठतम मित्र, और सबसे बड़ा शत्रु भी

मनुष्य अपने मन और बुद्धि द्वारा अपना उद्धार करे तथा अपना पतन न करे, क्योंकि मन ही मनुष्य का मित्र भी है और मन ही मनुष्य का शत्रु भी है. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को बुद्धि द्वारा जीत लिया है, उसके लिए मन उसका मित्र होता है, परन्तु जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं होतीं, उनके लिए मन शत्रु के समान आचारण करता है. (६.०५-०६)

योगी कौन?

योगी सबों में सर्वव्यापी परमात्मा को तथा परमात्मा में सबों को देखने के कारण समस्त प्राणियों को एक भाव से देखता है. (६.२९) जो मनुष्य सब जगह तथा सब

में मुझ परब्रह्म परमात्मा को देखता है और सबको मुझ में देखता है, मैं उससे अलग नहीं रहता तथा वह भी मुझ से दूर नहीं होता. (६.३०)

चंचल मन को नियंत्रित करने के दो उपाय

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, निस्सन्देह यह मन हवा की तरह बड़ा ही चंचल और आसानी से वश में होने वाला नहीं है; परन्तु मन को ध्यान आदि का अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वश में किया जाता है. (६.३५)

असफल योगी की गति

अर्जुन बोले– हे कृष्ण, श्रद्धालु, परन्तु असंयमी व्यक्ति, जो योग मार्ग से विचलित हो जाता है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को न प्राप्तकर किस गति को प्राप्त होता है? (६.३७) हे कृष्ण, क्या भगवत्प्राप्ति के मार्ग से गिरकर व्यक्ति भोग और योग दोनों से वंचित रहकर, छिन्न-भिन्न बादल की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता? (६.३८) श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, योगी का न तो इस लोक में न परलोक में ही नाश होता है. हे तात, शुभ काम करने वाला कोई भी व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है. (६.४०) असफल योगी स्वर्ग को प्राप्तकर, वहां बहुत समय तक रहकर फिर अच्छे आचरण वाले धनवान मनुष्यों अथवा ज्ञानवान योगियों के घर में जन्म लेता है, परन्तु इस प्रकार का जन्म संसार में बहुत ही दुर्लभ है. (६.४१-४२) हे अर्जुन, वहां उसे पूर्वजन्म में संग्रह किया हुआ ज्ञान अपने आप ही प्राप्त हो

जाता है तथा वह योगसिद्धि के लिए फिर प्रयत्न करता है. (६.४३)

श्रेष्ठतम योगी कौन?

समस्त योगियों में भी जो योगीभक्त मुझ में लीन होकर श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है, वही मेरे मत से सर्वश्रेष्ठ है. (६.४७)

ॐ तत्सदिति षष्ठोऽध्यायः ।

७. ज्ञानविज्ञानयोग

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, अनन्य प्रेम से मुझ में आसक्त मन वाले, मेरे आश्रित होकर अनन्य प्रेमभाव से योग का अभ्यास करते हुए तुम मुझे पूर्णरूप से निस्सन्देह कैसे जान सकोगे, उसे सुनो. (७.०१)

प्रकृति, पुरुष, और आत्मा की परिभाषा

मेरी प्रकृति – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार तत्त्व – आठ प्रकार से विभाजित है. (७.०४) हे अर्जुन, उपरोक्त प्रकृति मेरी अपरा शक्ति है. इससे भिन्न मेरी एक दूसरी परा चेतन शक्ति (अर्थात् 'पुरुष') है, जिसके द्वारा यह जगत धारण किया जाता है. (७.०५) तुम ऐसा समझो कि इन दोनों शक्तियों – प्रकृति और पुरुष – के संयोग से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं; तथा मैं, परब्रह्म परमात्मा, ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति और प्रलय का स्रोत हूं. (७.०६)

परमात्मा सब वस्तुओं का आधार है

हे अर्जुन, मुझसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है. यह सम्पूर्ण जगत मुझ परब्रह्म परमात्मारूपी सूत में हार की मणियों की तरह पिरोया हुआ है. (७.०७)

जो भी सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक गुण हैं, उन सबको तुम मुझसे ही उत्पन्न हुआ जानो. अतः वे गुण मुझपर निर्भर करते हैं, परन्तु मैं उनके आश्रित या उनसे प्रभावित नहीं होता हूं. (७.१२) प्रकृति के इन तीनों गुणों के कार्यों से यह सारा संसार भ्रमित रहता है, अतः मनुष्य इन गुणों से परे मुझ अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है. (७.१३)

प्रभु की खोज किसको?

मेरी इस अलौकिक त्रिगुणमयी माया को पार करना बड़ा ही कठिन है; परन्तु जो मनुष्य मेरी शरण में आते हैं, वे इस माया को आसानी से पार कर जाते हैं. (७.१४) हे अर्जुन, चार प्रकार के उत्तम मनुष्य – दुख से पीडित, परमात्मा को जानने की इच्छा वाले जिज्ञासु, धन या किसी इष्टफल की इच्छा वाले तथा ज्ञानी – मुझे भजते हैं. (७.१६) उन चार भक्तों में भी मुझ में निरन्तर लगा हुआ अनन्य भक्ति युक्त ज्ञानी श्रेष्ठ है; क्योंकि मुझ परमात्मा को तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी भक्त को मैं अत्यन्त ही प्रिय हूं और वह भी मुझे अत्यन्त प्रिय है. (७.१७) अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर कि "यह सब कुछ कृष्णमय है,"

मनुष्य मुझे प्राप्त करता है; ऐसा महात्मा बहुत दुर्लभ है. (७.१९)

जो कोई सकाम भक्त जिस किसी भी देवता को श्रद्धापूर्वक पूजना चाहता है, मैं उस भक्त की श्रद्धा को उसी देवता के प्रति स्थिर कर देता हूं. उस स्थिर श्रद्धा से युक्त वह मनुष्य अपने इष्ट देव की पूजा करता है और उस देवता के द्वारा इच्छित भोगों को निस्सन्देह प्राप्त करता है. वास्तव में वे इष्टफल मेरे द्वारा ही दिये जाते हैं.

ॐ तत्सदिति सप्तमोऽध्यायः ।

८. अक्षरब्रह्मयोग

अर्जुन बोले— हे पुरुषोत्तम, ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत तथा अधिदैव किसे कहते हैं? अधियज्ञ कौन है तथा वह इस देह में कैसे रहता है? हे मधुसूदन, संयमी मनुष्य द्वारा अन्त समय में आप किस तरह जानने में आते हैं? (८.०१-०२)

ब्रह्म, आत्मा, जीवात्मा और कर्म की परिभाषा

श्रीभगवान् बोले— परम अविनाशी आत्मा ही ब्रह्म है. ब्रह्म का स्वभाव अध्यात्म कहा जाता है. प्राणियों को उत्पन्न करने वाली ब्रह्म की क्रिया-शक्ति को कर्म कहते हैं. (८.०३) हे श्रेष्ठ अर्जुन, नश्वर वस्तु को अधिभूत और अक्षरब्रह्म के विस्तार (नारायण आदि) को अधिदैव कहते हैं.

इस शरीर में ईश्वररूप मैं, परब्रह्म परमात्मा, ही अधियज्ञ हूं. (८.०४)

पुनर्जन्म का सिद्धान्त और कर्म

जो मनुष्य अन्तकाल में भी मेरा ही स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है. इसमें सन्देह नहीं है. (८.०५) हे अर्जुन, मनुष्य मरने के समय जिस किसी भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह सदा उस भाव के चिन्तन करने के कारण उसी भाव को प्राप्त होता है. (८.०६)

प्रभु-प्राप्ति का सहज मार्ग

इसलिए हे अर्जुन, तुम सदा मेरा स्मरण करो और अपना कर्तव्य करो. इस तरह मुझ में अर्पण किए मन और बुद्धि से युक्त होकर निस्सन्देह तुम मुझको ही प्राप्त होगे. (८.०७)

मृत्युकाल में प्रभु-ध्यान से मोक्ष-प्राप्ति

हे अर्जुन, जो अनन्यचित से मुझ में ध्यान लगाकर प्रतिदिन लगातार (नित्य-निरन्तर) मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी को मैं सहज ही प्राप्त होता हूं. (८.१४) हे अर्जुन, ब्रह्मलोक और उसके नीचे के सभी लोकों के प्राणियों का पुनर्जन्म होता है; परन्तु मेरा लोक अर्थात् परमधाम प्राप्त होने पर मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता. (८.१६)

ॐ तत्सदिति अष्टमोऽध्यायः ।

९. ज्ञान का गूढ़ रहस्य

ब्रह्म का तत्त्वज्ञान परम रहस्य है

श्रीभगवान् बोले– तुम दोषदृष्टि रहित भक्त के लिये मैं इस परम गुह्य ब्रह्मविद्या (ज्ञान) को ब्रह्म अनुभूति (विज्ञान) सहित कहता हूं, जिसे जानकर तुम जन्म-मरण दुखरूपी संसार से मुक्त हो जाओगे. (९.०१) यह तत्त्वज्ञान सब विद्याओं का राजा, रहस्यमय, अत्यन्त पवित्र, फल देने वाला, धर्मयुक्त, साधन में सुगम तथा अविनाशी है. (९.०२)

यह सारा संसार मुझ परब्रह्म परमात्मा का विस्तार है. सभी मुझपर आश्रित या स्थित रहते हैं, मैं उनपर आश्रित नहीं रहता. (९.०४) जैसे सर्वत्र विचरण करने वाली वायु सदा आकाश में बिना कोई सहारा लिये स्थित रहती है, वैसे ही सभी मुझ में स्थित रहते हैं, ऐसा समझो. (९.०६)

सृष्टि-रचना और प्रलय का सिद्धान्त

मैं अपनी मायारूपी प्रकृति के द्वारा इन समस्त प्राणि समुदाय को – जो प्रकृति के गुणों के वश में रहते हैं – बार-बार रचता हूं. (९.०८) हे अर्जुन, सृष्टि की रचना आदि कर्मों में अनासक्त रहने के कारण वे कर्म मुझ परमात्मा को नहीं बांधते. (९.०९) हे अर्जुन, मेरी अध्यक्षता में माया देवी चराचर जगत को उत्पन्न करती है. इस तरह सृष्टि-चक्र चलता रहता है. (९.१०)

जो भक्तजन अनन्य भावसे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उन भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन

करता हूं. (९.२२) हे अर्जुन अर्जुन, जो भक्त श्रद्धापूर्वक दूसरे देवी-देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं – पर अज्ञानपूर्वक (अद्वैतरूप को नहीं जानने के कारण). (६.२३) जो मनुष्य प्रेमभक्ति से पत्र, फूल, फल, जल आदि कोई भी वस्तु मुझे अर्पण करता है, तो मैं उस शुद्धचित्त वाले भक्त का वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि उसका भोग भी करता हूं. (९.२६) हे अर्जुन, तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ हवन करते हो, जो दान देते हो, जो तप करते हो, वह सब पहले मुझे ही अर्पण करो. (९.२७)

कोई अक्षम्य पापी नहीं

सभी प्राणी मेरे लिए बराबर हैं. न मेरा कोई अप्रिय है और न प्रिय; परन्तु जो श्रद्धा और प्रेम से मेरी उपासना करते हैं, वे मेरे समीप रहते हैं और मैं भी उनके निकट रहता हूं. (९.२९) यदि कोई बड़े-से-बड़ा दुराचारी भी अनन्य भक्ति-भाव से मुझे भजता है, तो उसे भी साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि उसने अच्छा निश्चय किया है. (९.३०) और वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है तथा परम शान्ति को प्राप्त होता है. हे अर्जुन, तुम यह सत्य मानो कि मेरे भक्त का कभी भी विनाश अर्थात् नीच योनि में जन्म नहीं होता है. (६.३१)

भक्तिमार्ग अन्य मार्गों से सहज

हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र, पापी आदि जो कोई मेरी शरण में आते हैं, वे सभी परमधाम को प्राप्त करते हैं. (९.३२) मुझ में मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे प्रणाम करो. इस प्रकार मुझे अपना परम लक्ष्य मानकर अपने-आप को मुझ से लगाकर तुम मुझे ही प्राप्त होगे. (९.३४)

ॐ तत्सदिति नवमोऽध्यायः ।

१०. परमात्मा का विस्तार

परमात्मा सब वस्तुओं का मूल है

श्रीभगवान् बोले— मेरी उत्पत्ति को देवता, महर्षि आदि कोई भी नहीं जानते हैं; क्योंकि मैं सभी देवताओं और महर्षियों का भी आदिकारण हूं. (१०.०२) जो मुझे अजन्मा, अनादि और समस्त लोकों के महान् ईश्वर के रूप में जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानी है और सब पापों से मुक्त हो जाता है. (१०.०३)

बुद्धि, ज्ञान, भ्रम का अभाव, क्षमा, सत्य, इन्द्रिय संयम, मन संयम, सुख, दुख, उत्पत्ति, प्रलय, भय, अभय, अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, यश, अपयश आदि प्राणियों के अनेक प्रकार के भाव मुझसे ही प्रकट होते हैं. (१०.०४-०५) मैं ही सबकी उत्पत्ति का कारण हूं और मुझ से ही जगत का पालन-पोषण होता है. ऐसा जानकर बुद्धिमान् भक्तजन श्रद्धापूर्वक मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं. (१०.०८) मुझ में ही चित्त को स्थिर रखने वाले और मेरी

शरण में आने वाले भक्तजन आपस में मेरे गुण, प्रभाव आदि का एक दूसरे से कहते हुए सदा संतुष्ट रहते हैं. (१०.०६)

प्रभु भक्तों को ज्ञान देता है

निरन्तर मेरे ध्यान में लगे प्रेमपूर्वक मेरा भजन करने वाले भक्तों को मैं ब्रह्मज्ञान और विवेक देता हूं, जिससे वे मुझे प्राप्त करते हैं. (१०.१०) उनपर कृपा करके उनके अन्दर रहने वाला, मैं, उनके अज्ञानजनित अन्धकार को ज्ञानरूपी दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूं. (१०.११)

ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप कोई नहीं जान सकता

हे केशव, मुझसे आप जो कुछ कह रहे हैं इन सबको मैं सत्य मानता हूं. हे भगवन्, आपके वास्तविक स्वरूप को न देवता जानते हैं और न दानव. (१०.१४) हे प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, हे भूतेश, हे देवों के देव, जगत के स्वामी, पुरुषोत्तम, केवल आप स्वयं ही अपने आपको जानते हैं. (१०.१५)

सम्पूर्ण सृष्टि परब्रह्म का विस्तार है

श्रीभगवान् बोले— हे अर्जुन, अब मैं अपना प्रमुख विस्तार को तेरे लिए संक्षेप में कहूंगा, क्योंकि मेरे विस्तार का तो अन्त ही नहीं है. (१०.१६)

दैवी विस्तार का संक्षिप्त वर्णन

मैं पवित्र करने वालों में वायु हूं और शस्त्रधारियों में राम हूं, जलचरों में मगर और नदियों में पवित्र गंगा नदी हूं.

(१०.३१) हे अर्जुन, सारी सृष्टि का आदि, मध्य और अन्त भी मुझसे ही होता है. विराट्स्वरूप से सबका पालन-पोषण और संहार करने वाला भी मैं ही हूं. (१०.३३) मैं सबका नाश करने वाली मृत्यु और भविष्य में होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूं. हे अर्जुन, समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का बीज मैं ही हूं, क्योंकि चर और अचर कोई भी मेरे बिना जिन्दा नहीं रह सकता, अर्थात् सब कुछ मेरा ही स्वरूप है. (१०.३६)

सृष्टि परब्रह्म का लघुतम अंश मात्र है

हे अर्जुन, मेरी दिव्य विभूतियों का तो अन्त ही नहीं है. मैंने तुम्हें अपनी विभूतियों के विस्तार का वर्णन संक्षेप में कहा है. (१०.४०) जो भी वस्तु है, उसे तुम मेरे तेज के एक अंश से ही उत्पन्न हुई समझो. (१०.४१) हे अर्जुन, तुम्हें बहुत जानने की क्या आवश्यकता है? मैं अपने तेज अर्थात् योगमाया के एक अंशमात्र से ही सम्पूर्ण जगत को धारण करके उस में रहता हूं. (१०.४२)

ॐ तत्सदिति दशमोऽध्यायः ।

११. ईश्वर का विराट्रूप

प्रभुदर्शन भक्त का परम ध्येय

हे परमेश्वर, आप अपने को जैसा कहते हैं, वह ठीक है; परन्तु हे पुरुषोत्तम, मैं आपके ईश्वरीयरूप को अपनी आंखों से देखना चाहता हूँ. (११.०३) हे प्रभो, यदि आप समझें कि मेरे द्वारा आपका विराट्रूप देखा जाना संभव है; तो हे योगेश्वर, आप अपने दिव्य विराट्रूप का दर्शन दें. (११.०४)

श्रीभगवान् बोले— हे अर्जुन, अब तुम मेरे अनेक तरह के और अनेक रंग तथा आकृति वाले सैकड़ों-हजारों दिव्यरूपों को देखो. (११.०५) हे अर्जुन, मुझ में आदित्यों, वसुओं, रुद्रों तथा अश्विनी कुमारों और मरुद्‌गणों को देखो तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यजनक रूपों को भी देखो. (११.०६) हे अर्जुन, अब मेरे शरीर में एक ही जगह पर स्थित हुए चर और अचर सहित सारे जगत को तथा और जो कुछ देखना चाहते हो, उसे भी देख लो. (११.०७) परन्तु तुम अपनी इन आंखों से मुझे नहीं देख सकते हो, इसलिए मेरी योगशक्ति को देखने के लिए मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ. (११.०८)

श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को अपने विराट् विश्वरूप का दर्शन कराना

उस समय अर्जुन ने देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान् के दिव्य शरीर में – अनेक प्रकार के विभागों में विभक्त परन्तु एक ही जगह एकत्रित – सम्पूर्ण जगत को देखा. (११.१३)

अर्जुन बोले— आप ही जानने योग्य परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस विश्व के परम आश्रय हैं, आप ही सनातन धर्म के रक्षक हैं, आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है. (११.१८) हे महात्मन्, स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का यह सम्पूर्ण आकाश तथा समस्त दिशाएं केवल आपसे ही व्याप्त हैं. आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक भयभीत हो रहे हैं. (११.२०)

हम सब दैवी निमित्त मात्र

श्रीभगवान् बोले– मैं सम्पूर्ण लोकों का नाश करने वाला महाकाल हूँ और इस समय इन सब लोगों का नाश करने के लिए यहां आया हूँ। तुम्हारे सामने जो योद्धा लोग खड़े हैं, वे सब तुम्हारे युद्ध किए बिना भी जिन्दा नहीं रहेंगे. (११.३२) अतः तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ और यश को प्राप्त करो; शत्रुओं को जीतकर सम्पन्न राज्य भोगो. ये सब योद्धा पहले से ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं. हे अर्जुन, तुम केवल निमित्त ही बनो. (११.३३)

उस चतुर्भुजरूप में – जैसा तुम ने देखा है – मैं न वेदों के पढ़ने से, न तप से, न दान से और न यज्ञ करने से ही देखा जा सकता हूं. (११.५३) परन्तु केवल अनन्य भक्ति के द्वारा ही मैं उस चतुर्भुजरूप में देखा, तत्त्व से जाना तथा प्राप्त भी किया जा सकता हूं. (११.५४) हे अर्जुन, जो मनुष्य केवल मेरे ही लिए अपने सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करता है, मुझ पर ही भरोसा रखता है, मेरा भक्त है तथा जो आसक्ति रहित और निर्वैर है, वही मुझे प्राप्त करता है. (११.५५)

ॐ तत्सदिति एकादशोऽध्यायः।

१२. भक्तियोग

अर्जुन बोले– जो भक्त आपके कृष्णस्वरूप सगुण साकार रूप की उपासना करते हैं और जो भक्त मन और वाणी से परे

ब्रह्म को निराकार मानकर उसकी उपासना करते हैं, उन दोनों में कौन उत्तम योगी है. (१२.०१)

श्रीभगवान् बोले– जो भक्तजन मुझ में मन को एकाग्र करके नित्ययुक्त होकर परम श्रद्धा और भक्ति से मुझ परब्रह्म परमेश्वर के सगुण रूप की उपासना करते हैं, वे मेरे मत से श्रेष्ठ हैं. (१२.०२) परन्तु जो मनुष्य निराकार ब्रह्म की उपासना इन्द्रियों को अच्छी तरह नियमित करके, सभी में समभाव होकर, भूतमात्र के हित में रत रहकर करते हैं, वे भी मुझे प्राप्त करते हैं. (१२.०३-०४)

साकार की उपासना के कारण

निराकार ब्रह्म की उपासना में क्लेश अधिक होता है, क्योंकि देहधारियों द्वारा निराकार की गति कठिनाई पूर्वक प्राप्त होती है. (१२.०५) परन्तु हे अर्जुन, जो भक्त मुझको ही अपना परम लक्ष्य मानते हुए सभी कर्मों को मुझे अर्पण करके अनन्य भक्ति के द्वारा मेरे साकार रूप का ध्यान करते हैं, ऐसे भक्तों को मैं शीघ्र ही मृत्युरूपी संसार सागर से उद्धार कर देता हूं. (१२.०६-०७)

ईश्वर प्राप्ति के चार मार्ग

तुम मुझ में ही अपना मन लगाओ और बुद्धिसे मेरा ही चिन्तन करो, इसके उपरान्त निस्संदेह तुम मुझ में ही निवास करोगे. (१२.०८) हे अर्जुन, यदि तुम अपने मन को मुझ में स्थिर नहीं रख सकते, तो तुम पूजा, पाठ, ध्यान आदि के अभ्यास के द्वारा मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न करो. (१२.०९)

यदि तुम अभ्यास करने में असमर्थ हो, तो केवल मेरे लिए अपने कर्तव्य कर्मों का पालन करो, कर्मों को मेरे लिए करते हुए तुम मुझे प्राप्त करोगे. (१२.१०) यदि तुम इसे करने में भी असमर्थ हो, तो मुझपर आश्रित होकर, मन पर विजय प्राप्त कर, सब कर्मों के फल की आसक्ति का त्याग **करो.** (१२.११)

कर्मयोग का सरल और सर्वोत्तम मार्ग

मर्म जाने बिना अभ्यास करने से शास्त्रों का ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से परमात्मा के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है, और सब कर्मों के फल में आसक्ति का त्याग ध्यानसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल परम शान्ति की प्राप्ति होती है. (१२.१२)

भक्त के लक्षण

जो मनुष्य सभी प्राणियों से द्वेषरहित है, सबका प्रेमी है, दयालु है, ममता और अहंकार से रहित है, सुख और दुख में सम, क्षमाशील और संतुष्ट है; जो अपने मन और इन्द्रियों को वश में करके मुझ में दृढ़निश्चय होकर अपने मन और बुद्धि को मुझे अर्पण करके सदा मेरा ही ध्यान करता है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है. (१२.१३-१४) जिससे कोई व्यक्ति भय को प्राप्त नहीं होता तथा जो स्वयं भी किसी से भयभीत नहीं होता, वह मुझे प्रिय है. (१२.१५) जो इक्षारहित, शुद्ध, कुशल, पक्षपात से रहित, सुखी और सभी कर्मों में अनासक्त है, वैसा भक्त मुझे प्रिय है. (१२.१६) जो शत्रु और मित्र, मान और अपमान, सर्दी और गर्मी तथा सुख और दुख में सम है; जो आसक्ति रहित है, जिसे निन्दा और स्तुति दोनों बराबर है, जो कम बोलता है,

संतुष्ट है, जिसे स्थान में आसक्ति नहीं है तथा जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है. (१२.१८-१९)

व्यक्ति निष्ठता से दैवी गुण पाने का प्रयत्न करे

जो श्रद्धावान भक्त मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानकर उपरोक्त धर्ममय अमृत का जीवन जीते हैं, वे तो मुझे बहुत ही प्रिय हैं. (१२.२०)

ॐ तत्सदिति द्वादशोऽध्यायः।

१३. सृष्टि और सृष्टा

आसक्तिरहित होना; पुत्र, स्त्री, घर आदि में ममता का न होना; प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सम रहना; मुझमें अटल भक्ति का होना, एकान्त में रहना, संसारी मनुष्यों के समाज से अरुचि, अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति में लगे रहना, और तत्त्वज्ञान द्वारा सर्वत्र परमात्मा को ही देखना — यह सब ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं और जो इसके विपरीत है, वह अज्ञान कहा गया है.

दृष्टान्त कथा द्वारा ही प्रभु का वर्णन सम्भव

प्रभुके हाथ और पैर सब जगह हैं; उसके नेत्र, सिर, मुख और कान भी सब जगह हैं; क्योंकि वह सर्वव्यापी है. (१३.१३) वह (प्राकृत) इन्द्रियों के बिना भी (सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा) सभी विषयों का अनुभव करता है. सम्पूर्ण संसार का पालन-पोषण करते हुए भी आसक्तिरहित है तथा प्रकृति के गुणों से रहित होते हुए भी जीवरूप धारण कर गुणों का भोक्ता है. (१३.१४) सभी चर और अचर भूतों के बाहर और भीतर भी वही है. सूक्ष्म होने के कारण वह मनुष्य की इन्द्रियों द्वारा देखा या जाना नहीं जा सकता है तथा वह सर्वव्यापी होने के कारण अत्यन्त

दूर भी है और समीप भी. (१३.१५) वह एक होते हुए भी प्राणीरूप में अनेक दिखाई देता है. वह ज्ञान का विषय है तथा सभी भूतों को उत्पन्न करने वाला, पालन-पोषण करने वाला और संहार कर्ता भी वही है. (१३.१६)

पुरुष, प्रकृति, आत्मा, और परमात्मा का वर्णन

प्रकृति और पुरुष, इन दोनों को तुम अनादि जानो. सभी विभूतियां और गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं. शरीर और इन्द्रियों की उत्पत्ति भी प्रकृति से होती है और सुख-दुख का अनुभव पुरुष (अर्थात् चेतन शक्ति) के द्वारा होता है. (१३.१९-२०) प्रकृति के साथ मिलकर पुरुष प्रकृति के गुणों को भोगता है. प्रकृति के गुणों से संयोग के कारण ही पुरुष (जीव बनकर) अच्छी और बुरी योनियों में जन्म लेता है. (१३.२१) आत्मा ही जीवरूप से इस शरीर में साक्षी, सम्मति देने वाला, पालन कर्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा आदि कहा जाता है. (१३.२२)

विश्वास भी मोक्ष का मार्ग

हे अर्जुन, चर और अचर जितने भी प्राणी पैदा होते हैं, उन सबको तुम प्रकृति और पुरुष (अर्थात् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ) के संयोग से ही उत्पन्न हुए जानो. (१३.२६) जो मनुष्य अविनाशी परमेश्वर को ही समस्त नश्वर प्राणियों में समान भाव से स्थित देखता है, वही वास्तव में ईश्वर का दर्शन करता है. (१३.२७) क्योंकि सब में स्थित एक ही परमेश्वर को देखने वाला मनुष्य किसी की भी हिंसा नहीं करता है, इससे वह परमगति को प्राप्त होता है. (१३.२८) जो मनुष्य सभी कर्मों

को प्रकृति के गुणों द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और अपने आपको कर्ता नहीं मानता है, वास्तव में वही ज्ञानी है. (१३.२९) जिस क्षण साधक सभी प्राणियों को तथा उनके अलग-अलग विचारों को एकमात्र परब्रह्म परमात्मा से ही उत्पन्न समझ जाता है, उसी क्षण वह परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है. (१३.३०)

ब्रह्म के लक्षण

हे अर्जुन, जैसे एक ही सूर्य सारे जगत को प्रकाश देता है, वैसे ही एक परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चेतना प्रदान करता है. (१३.३३) **इस प्रकार तत्त्वज्ञान द्वारा सृष्टि (क्षेत्र) और सृष्टि के बनानेवाला (सृष्टा, क्षेत्रज्ञ) के भेद को तथा जीव का प्रकृति के विकारों से मुक्त होने के उपाय को जो लोग जान लेते हैं, वे परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं. (१३.३४)**

ॐ तत्सदिति त्रयोदशोऽध्यायः ।

१४. प्रकृति के तीन गुण

हे अर्जुन, मेरी प्रकृति सभी प्राणियों की योनि है, जिसमें मैं चेतनारूप बीज डालकर (जड़ और चेतन के संयोग से) समस्त भूतों की उत्पत्ति करता हूँ. (१४.०३)

हे अर्जुन, प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणरूपी रस्सी – सत्त्व, रजस और तमस – अविनाशी जीव को देह के साथ बांध देते हैं. (१४.०५) हे पापरहित अर्जुन, इनमें सतोगुण निर्मल होने के कारण विकाररहित और ज्ञान देने वाला है, यह जीव को सुख और ज्ञान की आसक्ति से बांधता है. (१४.०६) हे

अर्जुन, रजोगुण से विषय-भोग की इच्छा और आसक्ति उत्पन्न होती है. यह जीवात्मा को कर्मफल की आसक्ति से बांधता है. (१४.०७) और हे अर्जुन, सब जीवों को भ्रम में डालने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न जानो. तमोगुण लापरवाही, आलस और निद्रा के द्वारा जीव को बांधता है. (१४.०८)

गुणातीत होने पर मोक्ष

जब विवेकी मनुष्य तीनों गुणों के अतिरिक्त किसी अन्य को कर्ता नहीं समझता है तथा गुणों से परे मुझ परमात्मा को तत्त्व से जान लेता है, उस समय वह मुक्ति को प्राप्त करता है. **(१४.१९)**

तीनों गुणों से पार कैसे हो

अर्जुन बोले– हे प्रभो, इन तीनों गुणों से पार हुए (गुणातीत) मनुष्य के क्या लक्षण हैं? उसका आचरण कैसा होता है? और मनुष्य इन तीनों गुणों से कैसे पार हो सकता है? (१४.२१) श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, जो मनुष्य तीनों गुणों के कार्य –ज्ञान, सक्रियता और भ्रम – में बन्ध जाने पर बुरा नहीं मानता और उनसे मुक्त होने पर उनकी इच्छा भी नहीं करता है, जो साक्षी के समान रहकर "गुण ही अपने-अपने कार्य कर रहे हैं" ऐसा समझकर परमात्मा में स्थिर भाव से स्थित रहता है; (१४.२२-२३) जो सदा आत्मभाव में रहता है तथा सुख-दुख में समान रहता है; जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सोना बराबर है, जो धीर है, जो प्रिय-अप्रिय, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान तथा शत्रु-मित्र में समान भाव रखता है और जो

सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन के भाव से रहित है — वह गुणातीत कहा जाता है. (१४.२४-२५)

अनन्य भक्ति द्वारा गुण-बन्धनों को काटना सम्भव

जो मनुष्य अनन्य भक्ति से निरन्तर मेरी उपासना करता है, वह प्रकृति के तीनों गुणों को पार करके परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के योग्य हो जाता है. (१४.२६)

ॐ तत्सदिति चतुर्दशोऽध्यायः ।

१५. पुरुषोत्तमयोग

जो मान और मोह आदि से निवृत्त हो चुके हैं, जिन्होंने आसक्तिरूपी दोष को जीत लिया है, जो परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थित हैं और जिनकी कामनायें पूर्णरूप से समाप्त हो चुकी हैं तथा जो सुख-दुख आदि द्वन्द्वों से विमुक्त हो गये हैं — ऐसे ज्ञानीजन उस अविनाशी परमधाम को प्राप्त करते हैं. (१५.०५)

जीवात्मा भोक्ता है

जीवलोक में सनातन जीवात्मा मेरी ही शक्ति का एक अंश है, जो प्रकृति में स्थित मन सहित छः इन्द्रियों को चेतना प्रदान करता है. (१५.०७) जैसे हवा फूल से गन्ध को निकालकर एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाती है, वैसे ही जीवात्मा मृत्यु के बाद छः इन्द्रियों को एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाता है. (१५.०८)

यह जीव कान, आंख, त्वचा, जीभ, नाक और मन के द्वारा विषयों का सेवन करता है. अज्ञानीजन जीव को — एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते हुए या शरीर में रहकर विषयों को भोगते हुए — नहीं देख सकते; उसे केवल ज्ञानचक्षु वाले ही देख सकते हैं. (१५.०६-१०)

ब्रह्म सब वस्तुओं का सार है

मैं ही सभी प्राणियों में स्थित रहता हूं. स्मृति, ज्ञान तथा शंका समाधान भी मुझ से ही होता है. समस्त वेदों के द्वारा जानने योग्य वस्तु, वेदान्त का कर्ता तथा वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूं. (१५.१५)

क्षर, अक्षर और अक्षरातीत क्या हैं?

लोक में परब्रह्म के क्षर (नश्वर) पुरुष और अक्षर (अविनाशी) पुरुष नामक दो दिव्य स्वरूप हैं. समस्त जगत क्षर पुरुष का विस्तार है और अक्षर पुरुष (अर्थात् आत्मा) अविनाशी कहलाता है. (१५.१६) परन्तु इन दोनों से परे एक तीसरा उत्तम दिव्य पुरुष है, जो परब्रह्म अर्थात् परमात्मा कहलाता है. वह तीनों लोकों में प्रवेश करके ईश्वररूप से सब का पालन-पोषण करता है. (१५.१७) **क्योंकि मैं, परब्रह्म परमात्मा, क्षर पुरुष (अर्थात् नारायण) और अक्षर पुरुष (अर्थात् ब्रह्म) दोनों से परे हूं, इसलिए लोक और वेद में पुरुषोत्तम कहलाता हूं. (१५.१८)** हे अर्जुन, मुझ पुरुषोत्तम को इस प्रकार जानने वाला ज्ञानी निरन्तर मुझे ही भजता (अर्थात् भक्ति और प्रेम करता) है. (१५.१९) हे निष्पाप अर्जुन, इस प्रकार मेरे द्वारा कहे गये

इस गुह्यतम शास्त्र को तत्त्वतः जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है. (१५.२०)

ॐ तत्सदिति पञ्चदशोऽध्यायः ।

१६. दैवी और आसुरी स्वभाव

मोक्ष के लिये अर्जित प्रमुख दैवी गुणों की सूची

श्रीभगवान् बोले– हे अर्जुन, अभय, चित्त की शुद्धि, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति, दान, इन्द्रियों को काबू में रखना, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, क्रोध का अभाव, त्याग, शान्ति, किसी की निन्दा न करना, दया, विषयों से न ललचना, कोमलता, अकर्तव्य में लज्जा, चपलता का अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, किसी से वैर न करना, गर्व का अभाव आदि दैवी संपदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (छब्बीस) लक्षण हैं. (१६.०१-०३)

केवल दो जाति के मानव – ज्ञानी और अज्ञानी

हे अर्जुन, इस लोक में दो ही जाति के मनुष्य हैं —– दैवी और आसुरी. दैवी प्रकृति वालों का वर्णन मैंने विस्तारपूर्वक किया, अब तुम आसुरी प्रकृति वालों के बारे में सुनो. (१६.०६) आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य "क्या करना चाहिये तथा क्या नहीं करना चाहिये" इन दोनों को नहीं जानते हैं. उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न सदाचार और न सत्यभाषण ही. (१६.०७) वे कहते हैं कि संसार असत्य, आश्रयरहित, बिना ईश्वर के

और बिना किसी क्रम से अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के कामुक संयोग से ही उत्पन्न है. इसके सिवा और कोई भी दूसरा कारण नहीं है. (१६.०८) ऐसे नास्तिक विचार से जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, ऐसे मन्द बुद्धियुक्त, घोर कर्म करने वाले, अपकारी मनुष्यों का जन्म जगत का नाश करने के लिये ही होता है. (१६.०९) वे अपवित्र आचरण धारणकर संसार में रहते हैं. (१६.१०) ये लोग ऐसा समझते हैं कि यह विषयभोग ही सब कुछ है. (१६.११)

वे ऐसा सोचते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त किया है और अब इस मनोरथ को पूरा करूंगा, मेरे पास इतना धन है तथा इससे भी अधिक धन भविष्य में होगा. (१६.१३) अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोह जाल में फंसे, विषयभोगों में अत्यन्त आसक्त, ये लोग घोर अपवित्र नरक में गिरते हैं. (१६.१६) अपने आपको श्रेष्ठ मानने वाले, घमंडी, धन और मान के मद में चूर रहने वाले मनुष्य अविधिपूर्वक केवल नाम के लिए दिखावटी यज्ञ करते हैं. (१६.१७) अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोध के वशीभूत; दूसरों की निन्दा करने वाले ये लोग अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ परमात्मा से द्वेष करते हैं. (१६.१८)

अज्ञान का फल है दुख

ऐसे क्रूर और अपवित्र नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूं. (१६.१९) हे अर्जुन, वे मूढ़ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त करते हैं, फिर घोर नरक में जाते हैं. (१६.२०)

काम-क्रोध-लोभ नरक के तीन द्वार

काम, क्रोध और लोभ, ये जीव को नरक की ओर ले जाने वाले तीन द्वार हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग करना सीखना चाहिए. (१६.२१)

शास्त्रीय विधान का पालन अनिवार्य

मनुष्य के कर्तव्य और अकर्तव्य के निर्णय में शास्त्र ही प्रमाण है. अतः तुम्हें शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही अपना कर्तव्यकर्म करना चाहिये. (१६.२४)

ॐ तत्सदिति षोडशोऽध्यायः।

१७. श्रद्धा के तीन प्रकार

श्रीभगवान् बोले— मनुष्यों की स्वाभाविक श्रद्धा तीन प्रकार की – सात्त्विक, राजसिक और तामसिक – होती है, उसे सुनो. (१७.०२) हे अर्जुन, सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके स्वभाव तथा संस्कार के अनुरूप होती है. मनुष्य अपने स्वभाव से जाना जाता है. मनुष्य जैसा भी चाहे वैसा ही बन सकता है, यदि वह श्रद्धापूर्वक अपने इच्छित ध्येय का चिन्तन करता रहे. (१७.०३) सात्त्विक व्यक्ति देवी-देवताओं को पूजते हैं; राजस मनुष्य यक्ष और राक्षसों को तथा तामस व्यक्ति भूतों और प्रेतों की पूजा करते हैं. (१७.०४)

भोजन तथा यज्ञ के तीन प्रकार

आयु, बुद्धि, बल, स्वास्थ्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले; रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा शरीर को शक्ति देने वाले सात्त्विक आहार सात्त्विक व्यक्ति को प्रिय होते हैं. (१७.०८) दुख, चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले; बहुत कड़वे, खट्टे, नमकीन, गरम, तीखे, रूखे और दाहकारक राजसिक आहार राजसिक व्यक्ति को प्रिय होते हैं. (१७.०९) अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी, जूठा और मांस, मदिरा आदि तामसिक आहार तामसिक मनुष्य को प्रिय होता है. (१७.१०)

"यज्ञ करना हमारा कर्तव्य है"— ऐसा सोचकर, बिना फल की आशा करने वालों द्वारा विधिपूर्वक किया गया यज्ञ सात्त्विक है. (१७.११) हे अर्जुन, जो यज्ञ फल की इच्छा से अथवा दिखाने के लिये किया जाता है, उसे तुम राजसिक समझो. (१७.१२) शास्त्रविधि, अन्नदान, मंत्र, दक्षिणा और श्रद्धा के बिना किये जाने वाले यज्ञ को तामसिक यज्ञ कहते हैं. (१७.१३)

विचार, वाणी, और कर्म का तप

वाणी वही अच्छी है जो दूसरों के मन में अशान्ति पैदा न करे, जो सत्य, मधुर और हितकारक हो तथा जिसका उपयोग शास्त्रों के पढ़ने में हो. ऐसी अच्छी वाणी को वाणी का तप कहते हैं. (१७.१५)

दान के तीन प्रकार

"दान देना हमारा कर्तव्य है" — ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के अनुसार बिना प्रत्युपकार की इच्छा से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक माना गया है. (१७.२०) जो दान फल-प्राप्ति, प्रत्युपकार की इच्छा से अथवा बिना श्रद्धा से दिया जाता है, वह दान राजसिक कहा गया है. (१७.२१) जो दान देश, काल और पात्र का विचार किये बिना अथवा पात्र का अनादर या तिरस्कार करके दिया जाता है, वह दान तामसिक कहा गया है. (१७.२२)

ब्रह्म के तीन नाम

ब्रह्म के — जिनके द्वारा सृष्टि के आदि में वेदों, ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है — ओम्, तत् और सत् तीन नाम कहे गये हैं. (१७.२३) यज्ञ, तप और दान में श्रद्धा तथा परमात्मा के लिए किये जाने वाले निष्काम कर्म को भी 'सत्' कहते हैं. (१७.२७)

हे अर्जुन, यज्ञ, दान, तप आदि जो कुछ भी कर्म बिना श्रद्धा के किया जाता है, वह 'असत्' कहा जाता है, जिसका न इस लोक में और न परलोक में ही कोई प्रयोजन है. (१७.२८)

ॐ तत्सदिति सप्तदशोऽध्यायः ।

१८. मोक्ष की प्राप्ति

अर्जुन बोले— हे वासुदेव, मैं संन्यास और त्याग को तथा इनके भेद को अच्छी तरह जानना चाहता हूं. (१८.०१)

संन्यास और त्याग की परिभाषा

श्रीभगवान् बोले— सकाम कर्मों के परित्याग को ज्ञानीजन “संन्यास” कहते हैं; तथा विवेकी मनुष्य सभी कर्मों के फलों में आसक्ति के त्याग को “त्याग” कहते हैं. (१८.०२)

त्याग के तीन प्रकार

हे अर्जुन, कर्तव्यकर्म का त्याग उचित नहीं है. भ्रमवश उसका त्याग करना तामसिक त्याग कहा गया है. (१८.०७) मनुष्य के लिये सभी कर्मों का त्याग करना संभव नहीं है, अतः जो सभी कर्मों के फल में आसक्ति का त्याग करता है, वही त्यागी कहा जाता है. (१८.११)

कर्म के पांच कारण

हे अर्जुन, सभी कर्मों की सिद्धि के लिये ये पांच कारण — स्थूल शरीर, प्रकृति के गुणरूपी कर्ता, पांच प्राण, इन्द्रियां तथा प्रारब्ध — बताये गये हैं. (१८.१३-१४) मनुष्य अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा जो कुछ भी कर्म करता है, उसके ये पांच कारण हैं. (१८.१५) अतः जो केवल अपने आपको ही कर्ता मान बैठता है, वह अज्ञानी मनुष्य अशुद्ध बुद्धि के कारण नहीं समझता है. (१८.१६) जिस मनुष्य के अन्तःकरण में "मैं कर्ता हूं" का भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि कर्मफल की

आसक्ति से लिप्त नहीं है, वह इन सारे प्राणियों को मारकर भी वास्तव में न किसी को मारता है और न पाप से बन्धता है. (१८.१७)

कर्म और कर्ता के तीन प्रकार

जो कर्म शास्त्र के अनुसार और कर्मफल की इच्छा और आसक्ति से रहित है तथा बिना राग-द्वेष से किया गया है, वह कर्म सात्त्विक कहा जाता है. (१८.२३) जो कर्मफल की कामना वाले, अहंकारी मनुष्य द्वारा बहुत परिश्रम से किया जाता है, वह कर्म राजसिक कहा गया है. (१८.२४) जो कर्म परिणाम, अपनी हानि, परपीड़ा और अपनी शक्ति को न विचारकर केवल भ्रमवश किया जाता है, वह कर्म तामसिक कहलाता है. (१८.२५)

जो कर्ता आसक्ति और अहंकार से रहित तथा धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य की सफलता और असफलता में निर्विकार रहता है, वह कर्ता सात्त्विक कहा जाता है. (१८.२६) राग-द्वेष से युक्त, कर्मफल का इच्छुक, लोभी तथा दूसरों को कष्ट देने वाला, अपवित्र विचार वाला और हर्ष-शोक से युक्त कर्ता राजसिक कहा जाता है. (१८.२७) अयुक्त, असभ्य, हठी, धूर्त, द्वेषी, आलसी, उदास और टालमटूल करनेवाला कर्ता तामसिक कहा जाता है. (१८.२८)

बुद्धि के तीन प्रकार

जो बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा मुक्ति और बन्धन को यथार्थ रूप से जानती है, वह बुद्धि सात्त्विक है. (१८.३०) हे अर्जुन, जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म

और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को ठीक तरह से नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसिक है. (१८.३१) हे अर्जुन, जो बुद्धि अज्ञान के कारण अधर्म को ही धर्म मान लेती है, इसी तरह सभी चीजों को उल्टा समझ लेती है, वह बुद्धि तामसिक है. (१८.३२)

मानव जीवन के चार लक्ष्य

- **अपना कर्त्तव्य भली-भांति निभाना**
- **धनोपार्जन करना**
- **इन्द्रिय सुखों का संयम पूर्वक उपभोग**
- **निर्वाण प्राप्त करना**

आनन्द के तीन प्रकार

मनुष्य को आध्यात्मिक साधना से प्राप्त सुख से सभी दुखों का अन्त हो जाता है. (१८.३६) ऐसे आत्मबुद्धिरूपी प्रसाद से उत्पन्न सुख को – जो आरम्भ में विष की तरह, परन्तु परिणाम में अमृत के समान होता है – सात्त्विक सुख कहते हैं. (१८.३७) इन्द्रियों के भोग से उत्पन्न सुख को – जो भोग के समय तो अमृत के समान लगता है, परन्तु जिसका परिणाम विष की तरह होता है–राजसिक सुख कहा गया है. (१८.३८) निद्रा, आलस्य और लापरवाही से उत्पन्न सुख को, जो भोगकाल में तथा परिणाम में भी मनुष्य को भ्रमित करने वाला होता है, तामसिक सुख कहा गया है. (१८.३९) पृथ्वी पर अथवा स्वर्ग के देवताओं में कोई भी प्राणी

प्रकृति के इन तीन गुणों से मुक्त होकर नहीं रह सकता है. (१८.४०)

व्यक्ति की योग्यता के अनुसार श्रम का विभाजन

हे अर्जुन, चार वर्णों — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र — में कर्म का विभाजन भी मनुष्यों के स्वभाव जनित गुणों के अनुसार ही किया गया है. (१८.४१) शम, दम, तप, शौच, सहिष्णुता, सत्यवादिता, ज्ञान, विवेक और आस्तिक भाव — ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं. (१८.४२) शौर्य, तेज, दृढ़ संकल्प, चालाकी, युद्ध से न भागना, दान देना और शासन करना — ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं. (१८.४३) खेती, गौपालन तथा व्यापार — ये सब वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं तथा शूद्र का स्वाभाविक कर्म सेवा करना है. (१८.४४)

कर्तव्य, साधना, और भक्ति से मोक्ष की प्राप्ति

मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धि को कैसे प्राप्त कर सकता है, उसे तुम मुझसे सुनो. (१८.४५) जिस परब्रह्म परमात्मा से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिससे यह सारा जगत व्याप्त है, उसका अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है. (१८.४६) अपना गुणरहित सहज और स्वाभाविक कार्य आत्मविकास के लिए दूसरे अच्छे अस्वाभाविक कार्य से अच्छा है, क्योंकि निष्काम भाव से अपना स्वभाविक कर्म करने से मनुष्य को पाप नहीं लगता है. (१८.४७) सभी कर्म किसी-न-किसी दोष से युक्त होते हैं, इसलिए अपने दोषयुक्त सहज स्वाभाविक कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए. (१८.४८)

श्रद्धा और भक्ति (अर्थात् पराभक्ति) के द्वारा ही मैं तत्त्व से जाना जा सकता हूं कि मैं कौन हूं और क्या हूं. मुझे तत्त्व से जानने के पश्चात् तत्काल ही मनुष्य मुझ में प्रवेश कर जाता है. (१८.५५)

समस्त कर्मों को श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मुझे अर्पण कर, मुझे अपना परम लक्ष्य मानकर मुझ पर ही भरोसा रख तथा निष्काम कर्मयोग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझ में ही चित्त लगा. (१८.५७)

कर्म-बन्धन और स्वतंत्र इच्छा-शक्ति

हे अर्जुन, तुम अपने संस्कार या प्रारब्ध जनित स्वाभाविक कर्म के बन्धनों से बन्धे हो, अतः भ्रमवश जिस काम को तुम नहीं करना चाहते हो, उसे भी तुम विवश होकर करोगे. (१८.६०) हे अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित होकर अपनी माया के द्वारा प्राणियों को कठपुतली की तरह नचाता रहता है. (१८.६१) मैंने गुह्य से भी गुह्यतर ज्ञान तुमसे कहा है. अब इस पर अच्छी तरह से विचार करने के बाद तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो. (१८.६३)

समर्पण, प्रभु-प्राप्ति का परम मार्ग

सभी कर्मों में अहंकार और कर्मफल में आसक्ति का त्याग करके तुम एक मेरी ही शरण में आ जाओ. शोक मत करो, मैं तुम्हें समस्त पापों (अर्थात् कर्म के बन्धनों) से मुक्त कर दूँगा. (१८.६६)

परमात्मा की परम सेवा तथा सर्वोत्तम दान

गीता के इस गुह्यतम ज्ञान को भक्तिरहित व्यक्तियों को, अथवा जो इसे सुनना नहीं चाहते हों, अथवा जिन्हें मुझ में श्रद्धा न हो; उन लोगों से कभी नहीं कहना चाहिए. (१८.६७) जो व्यक्ति इस परम गुह्य ज्ञान का मेरे भक्तजनों के बीच प्रचार और प्रसार करेगा, वह मेरी यह सर्वोत्तम परा भक्ति करके निस्सन्देह मुझे प्राप्त होगा. उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई मनुष्य नहीं होगा; और न मेरा उससे ज्यादा प्रिय इस पृथ्वी पर कोई दूसरा होगा. (१८.६८-६९)

श्री गीताजी की महिमा

जो व्यक्ति हम दोनों के इस धर्ममय संवाद का पाठ करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा — यह मेरा वचन है. (१८.७०) तथा जो श्रद्धा पूर्वक — बिना आलोचना किये — इसे केवल सुनेगा, वह भी सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर पुण्यवान लोगों के स्वर्गरूपी शुभ लोकों को प्राप्त करेगा. (१८.७१)

संतुलित जीवन के लिये आत्मज्ञान और कर्मयोग दोनों की आवश्यकता

संजय बोले — जहां भी, जिस देश या घर में, (धर्म अर्थात् शास्त्रधारी) योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा (धर्म रक्षा एवं कर्मरूपी) शस्त्रधारी अर्जुन दोनों होंगे, वहीं श्री, विजय,

विभूति और नीति आदि सदा विराजमान रहेंगी. ऐसा मेरा अटल विश्वास है.(१८.७८)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्   हरिः ॐ तत्सत्
श्रीकृष्णार्पणं अस्तु शुभं भूयात्
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गीता सार

१. क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो? किससे व्यर्थ डरते हो? कौन तुम्हें मार सकता है? आत्मा न पैदा होती है, न मरती है.

२. जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है. जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा. तुम भूत का पश्चाताप न करो. भविष्य की चिन्ता न करो. शिर्फ वर्तमान ही चल रहा है. अपना कर्तव्य करते रहो.

३. तुम्हारा क्या गया जो तुम रोते हो? तुम क्या लाये थे जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था जो नाश हो गया? तुम कुच्छ लेकर न आए, जो लिया यहीं समाज से लिया. जो दिया उसी को दिया. खाली हाथ आए, खाली हाथ ही जाओगे. जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा. तुम इसे अपना मान कर मग्न हो रहे हो. बस, यह मोह ही तुम्हारे दुखों का कारण है.

४. परिवर्तन संसार का नियम है. जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो नया जीवन देती है. जब मेरा-तेरा, अपना-पराया, छोटा-बडा, मन से हटा दोगे, फिर सब तुम्हारा होगा और तुम सबके होगे.

५. न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो. यह शरीर पंच तत्त्व– पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायुसे बना है, और इसी मे मिल जायगा. तुम आत्मा हो, जिसका कभी नाश नही होता.

अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी संयुक्त राज्य अमेरीका में एक पंजीकृत, लाभ-निरपेक्ष, आयकर-मुक्त धार्मिक संस्थान है, जो श्रीमद् भगवद्गीता के माध्यम से मानवता की सेवा करने और जन सामान्य में प्रबुद्धता जागृत करने के ध्येय से १९८४ में स्थापित की गई थी. अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी के लक्ष्य और उद्देश्य निम्नांकित हैं—

१. श्रीमद् भगवद्गीता का अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशन और नाममात्र सहयोग-राशि-मूल्य पर प्रसार करना तथा भारत और अमेरिका से आरम्भ कर विश्वभर में गीता का पुस्तकालयों, अस्पतालों, होटलों, मोटलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में वितरण करना, जैसा कि अमेरिकन बाइबिल सोसायटी विश्वभर में बाइबिल का प्रचार-प्रसार करती है.

२. श्रीमद् भगवद्गीता तथा अन्य वैदिक धर्मग्रन्थों की मूल असाम्प्रदायिक सार्वभौमिक शिक्षा का सहज-सरल भाषा में अनुवाद द्वारा प्रसार और उसके लिए देश-देश में सोसायटी की शाखाओं की स्थापना करना.

३. गीता अध्ययन और सत्संग सभाओं की स्थापना में सहयोग और मार्गदर्शन देना तथा युवा, छात्र-वर्ग और व्यस्त व्यावसायिक प्रशासकों एवं अन्य रुचि रखने वालों में गीता का पत्राचार द्वारा निःशुल्क प्रशिक्षण करना.

४. वैदिक ज्ञान के अध्ययन और प्रसार में जुटे अन्य व्यक्तियों तथा लाभ-निरपेक्ष संस्थाओं को प्रेरणा, सहयोग और सहायता देना तथा आध्यात्मिक, तत्त्वज्ञान, ध्यानयोग आदि पर व्याख्यानों, परिसंवादों और संक्षिप्त पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना.

५. वेदों, उपनिषदों, गीता, रामायण तथा विश्व के अन्य प्रमुख धर्मग्रन्थों की शाश्वत असाम्प्रदायिक शिक्षा के माध्यम से विभिन्न धर्मों के बीच की खाई को पाटना तथा सब वर्णों, जातियों, धर्मों और वर्गों में एकता पैदा करना एवं मानव जाति में विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रसार करना.